International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 94-96

महर्षि दयानन्द सरस्वती का राजनैतिक चिन्तन

डॉ. अमित शर्मा
सहायक प्रवक्ता संस्कृत (अनुबंध), सी. आर. किसान महाविद्यालय, जीन्द, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान–विज्ञान का मूल आधार वेद हैं। सर्वप्रथम चार वेद, उपवेद, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक एवं उपनिषद् ये वैदिक साहित्य के ही अन्तर्गत आते हैं। यह वैदिक साहित्य ही समस्त ज्ञान–विज्ञान का केन्द्र है। राजनैतिक ज्ञान का विवरण भी इसी वैदिक साहित्य में विस्तृत रूप से प्राप्त होता है। प्राचीन वैदिककाल में भी भारत में राष्ट्र एवं राजनीति की अवधारणा पूर्ण रूप से विकसित थी। ये राष्ट्र जनपदों का ही अपर रूप थे। ऋग्वेद में इन्द्र को सम्राट् कहा गया है[1] तथा उसे सम्पूर्ण भुवन के एकराष्ट्र रूप में विराजमान बताया गया है।[2] कालान्तर में वैदिक साहित्य के कई भाग लुप्त हो चुके थे किन्तु जितना भी वैदिक साहित्य आज उपलब्ध है उसके आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि अन्य विचारों की भाँति राजनैतिक विचारों का केन्द्रबिन्दु निश्चित रूप से प्राचीन वैदिक वाङ्मय रहा है।

समय के साथ–साथ इस वैदिक ज्ञान का स्थान अनेक प्रकार की अतार्किक, रूढिवादी विचारधाराओं ने ले लिया जिसके कारण भारतीय समाज पतन के पथ पर अग्रसर हुआ। यह भारतवर्ष का सौभाग्य ही है कि समय–समय पर ऐसे महापुरुषों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने भारतीय समाज का पुनः वैदिकज्ञान के माध्यम से मार्गदर्शन किया तथा आजीवन भारतीय वैदिकज्ञान का प्रचार–प्रसार एवं समाज के उत्थान के लिए कार्य किया। ऐसे ही महापुरुषों में स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम मुख्य है जिन्होनें भारतीय समाज एवं वैदिकज्ञान के प्रचार–प्रसार हेतु 'आर्यसमाज' की स्थापना की जिस के माध्यम से भारतवर्ष के साथ–साथ सम्पूर्ण विश्व को मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

'आर्यसमाज' की स्थापना के समय भारतवर्ष का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पतन अपने चरम पर था। विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा दी गई राजनैतिक पराधीनता ने भारतवासियों को दुर्बलता, हीनभावना, सांस्कृतिक तथा धार्मिक उत्पीडन, आत्मज्ञान का आभाव एवं दरिद्रता आदि विकृतियों को उत्पन्न किया जिनका उन्मूलन लगभग असम्भव सा प्रतीत होता था। उस समय भारतीय धार्मिक, आध्यात्मिक एवं नैतिकमूल्य पूर्णतः क्षतिग्रस्त थे। वैदिक ज्ञान–विज्ञान तो मानो अतीत की वस्तु हो चुकी थी। ऐसे समय में 'आर्यसमाज' के जनक महर्षि दयानन्द का विश्वविख्यात कथन 'वेदों की ओर लौटो' भारतीय समाज के लिए मृतसंजीवनी के समान महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। 'आर्यसमाज' ने सुदृढ़ वैदिक ज्ञान के आधार पर ही भारतीय समाज को सुसंगठित करने का कार्य किया। एक ओर जहाँ उस समय प्रत्येक ज्ञान–विज्ञान एवं सुव्यवस्था का प्रदाता पाश्चात्य जगत को माना जाने लगा था, वहीं दूसरी ओर 'आर्यसमाज' के अथक प्रयासों के माध्यम से जनमानस में स्वराज, स्वशासन–सुशासन एवं स्वाधीनता की भावना का उदय हुआ। महर्षि दयानन्द ने 'आर्यसमाज' रूपी सुव्यवस्थित माध्यम से उत्कृष्ट राजनैतिक विचारों को प्रस्तुत किया जिनके आधार पर राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक क्रान्ति में तीव्रता उत्पन्न हुई और भारतवर्ष में पाश्चात्य पराधीनता को अन्त हो सका। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द द्वारा रचित ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका एवं लघुग्रन्थ संग्रह में पग–पग पर उत्कृष्ट राजनैतिक चिन्तन दृष्टिगोचर होता है। इसी राजनैतिक चिन्तन के कारण उन्हें एक श्रेष्ठ राजनीतिक चिन्तक भी कहा जाता है। महर्षि दयानन्द राजनीति को एक ऐसा वृक्ष मानते थे, जिसके पत्तों को न सींचकर उसकी जड़ को सींचना आवश्यक है। उनके अनुसार भारतवर्ष की तत्कालीन चिन्तनीय स्थिति का कारण राजाओं के कुत्सित मन्त्री थे, जो राजाओं को उचित मार्गदर्शन देने में असमर्थ थे। इस समस्या को हल करने हेतु महर्षि दयानन्द ने राजाओं के साथ व्यक्तिगत सम्बंध स्थापित करने का प्रयास किया जो कि एक कुशल राजनीतिज्ञ ही कर सकता है।

आर्यसमाज के प्रत्येक ग्रन्थों में स्वदेशी, स्वाभिमान, स्वशासन एवं उचित राजव्यवस्था अथवा राजनीति आदि का प्रयोग स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। आर्यसमाज के निर्माता महर्षि दयानन्द द्वारा ही सर्वप्रथम 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया गया तथा भारतीय जनमानस को देशोन्नति एवं कुशल राजनीति हेतु प्रेरित किया गया। आर्यसमाज के समाजसुधारक इसी पथ पर आगे बढ़कर सर्वप्रथम भारतवर्ष में स्वराज्य की स्थापना कर विश्व की राज्यव्यवस्था एवं राजनीति में सुधार लाना चाहते थे। आर्यसमाज के आधारभूतस्तम्भ महर्षि दयानन्द के पत्रों में वर्णित मुख्य लक्ष्य आर्यसमाज के राजनैतिक चिन्तन को प्रकट करते हैं।

महर्षि दयानन्द के पत्रों में राज्यव्यवस्था का वर्णन

1. सभी सभ्य आर्य राजा संस्कृत की शिक्षा प्राप्त कर प्राचीन उन्नत आदर्शों को पुनः स्थापित करें।
2. आर्य राजाओं के सभी प्रशासक भी इन्हीं आदर्शों का पालन करने वाले हों।
3. राजवर्ग के सभी बालक बाल्यकाल से ही इस शिक्षा को प्राप्त करें।
4. सभी छोटी–बड़ी राजव्यवस्थाओं में धर्मशास्त्रोक्त न्यायव्यवस्था लागू हो तथा नियमों अथवा कानून को नवीनता के नाम पर विकृत न किया जाए।
5. राजव्यवस्था में निकृष्ट प्रजातन्त्र रूप प्रचलित न हो अपितु आचार्य मनु द्वारा प्रदत्त समुचित राजनियम ही प्रयोग किए जाएँ।
6. राज्यवर्ग व्यसनों का आदि न हो अपितु एक कुटुम्ब के समान प्रजापालन हेतु प्रतिबद्ध हो।
7. राज्यव्यवस्था के अन्तर्गत गोरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाए।
8. रियासतों में योग एवं यज्ञ व्यवहार में रहे एवं क्षत्रियवर्ग

मर्यादित एवं आदर्शों का अनुसरण करने वाला हो।

पूर्वोक्त सभी बिन्दु विश्व के समस्त राजनैतिक तंत्रों हेतु उपयोगी एवं अनुकरणीय हैं। वर्तमान में प्रचलित प्रजातन्त्र की सुस्पष्ट छवि हमें महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों अथवा पत्रों में देखने की मिलती है।

राज्य प्रशासन विषयक वर्णन

स्वामीजी उदयपुराधीश को पत्र में लिखते हैं कि राजकार्य किसी एक पर निर्भर न रखें अपितु उसे राजपुरुषों एवं प्रजापुरुषों की सहमति के अनुकूल प्रचलित करें।[3]

राज्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए राजसमाज, विद्यासमाज एवं धर्मसमाज रूपी तीन सभाओं को नियत करें एवं उनके अनुरूप ही राज्य का शासन संचालित हो।[4] इन समाजों में प्रजा एवं राजपुरुष दोनों ही नियम रहें जिसमें राजपुरुष राजोन्नति एवं प्रजापुरुष प्रजा की उन्नति में प्रयत्नशील रहें। पूर्वोक्त तीनों समाजों के विचारानुकूल ही आधुनिक नियम प्रचारित किये जाएँ।[5] इन नियमों को कठोरता से पालन करने की आज्ञा राज्य में प्रचारित की जाए तथा इनका उल्लंघन अमाननीय एवं दण्डनीय हो। इस प्रकार स्पष्ट है कि आर्यसमाज के प्रणेता महर्षि दयानन्द द्वारा राजा को जो निर्देश दिए गए हैं वे वर्तमान कालीन संसद एवं प्रजातंत्र की रचना का ही समर्थन करते हैं।

प्रशासक के गुण एवं प्रशासन कार्य

महर्षि दयानन्द राजा के गुणों पर प्रकाश डालते हुए शाहपुराधीश महाराजा नाहर सिंह को पत्र लिखते हुए कहते हैं कि राजा को उचित कार्य करने वालों को पारितोषिक एवं अनुचित कार्य करने वालों को दण्ड अवश्य देना चाहिए ऐसा न करने पर राजाज्ञा का कुछ भी महत्व नहीं रहेगा।[6] राजा की शोभा प्रजा को विद्यावान, धर्मात्मा एवं चतुर बनाने में है न की केवल मूर्खों पर शासन करने में। राजा एवं प्रजा को ऐसा कानून चलाना अथवा मानना चाहिए जिससे चोरी, जूआ, मिथ्या साक्षी, बाल्यावस्था में विवाह एवं विद्या का अभाव आदि न होने पाए। राजा एवं प्रजा ऐसे नियमों को धर्म मानकर उस पर चलें। क्योंकि धर्म का अर्थ न्याय है एवं न्याय का अर्थ है पक्षपात न करना।[7] इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्यसमाज कें माध्यम से सम्पूर्ण विश्व के सर्वांगींण विकास में बाधक तत्त्वों को प्रस्तुत कर उन्नति पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं।

राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्य

महर्षि दयानन्द के अनुसार राजा को प्रजापालन को ही अपना धर्म मानना चाहिए एवं प्रमाद रहित होकर प्रशासनिक कार्य का निर्वाह करना चाहिए। जैसा आचरण एवं पुरुषार्थ प्रधानपुरुष (राजा) द्वारा किया जाता है वैसा ही अन्य जनसामान्य करते हैं। इसलिए प्रधानपुरुष (राजा) को सदैव धर्मयुक्त एवं न्यायप्रिय आचरण करना चाहिए।[8] कहा भी गया है यथा राजा तथा प्रजा। जैसा अच्छा या बुरा व्यवहार प्रधानपुरुष द्वारा किया जाता है वैसा ही व्यवहार प्रजा में भी दृष्टिगोचर होने लगता है।[9] पूर्वोक्त चिन्तन द्वारा प्रशासक के दोषों को प्रस्तुत कर उसे स्वराज्य विकास के लिए प्रेरित किया गया है जिसका अनुकरण सम्पूर्ण विश्व की राजव्यवस्थाओं में सरलतापूर्वक किया जा सकता है। महर्षि द्वारा एक राजा को गुप्त समाचार के माध्यम से परामर्श दिया गया कि वैश्या से अधिक प्रेम तथा स्वपत्नी से अल्प प्रेम रखना आप जैसे महाराजाओं से अपेक्षित नहीं है। आपका बहुमूल्य समय ऐसे निम्न क्रियाकलापों अथवा विषयासक्ति के लिए नहीं अपितु परिश्रम एवं न्यायप्रिय पुरुषार्थ कर जनसाधारण के हितार्थ है।[10]

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का वर्णन

अर्थव्यवस्था किसी भी राष्ट्र की मुख्य धुरी अथवा केन्द्र बिन्दु है एवं राष्ट्र के समस्त विकासकार्य इसी पर आधारित रहते हैं। अतः एक सुदृढ अर्थव्यवस्था के माध्यम से ही एक सुराष्ट्र का निर्माण हो सकता है। महर्षि दयानन्द के अनुसार धर्मपूर्वक जिसका उपार्जन किया जाए वह अर्थ है तथा अधर्म के माध्यम से अर्जित किया जाने वाला अर्थ अनर्थ है। यहाँ स्वामीजी का भाव यह है कि राज्याधिकारियों द्वारा संत्राहित धन ही सही प्रकार से अर्थ है तथा चोरी, शोषण, लूटपाट से प्राप्त धन अनर्थ है। आज के समय में जनमानस की ऐसी मानसिकता होती जा रही है कि अनैतिक मार्ग पर चले बिना धनार्जन असम्भव है। इसी कारण कालाधन संग्रहित किया जा रहा है जो कि अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण एवं दुःखदायी है।[11] 'आर्यसमाज' द्वारा प्रदत्त अर्थ एवं अनर्थ का यह विवेकपूर्ण चिन्तन विश्व की प्रत्येक अर्थव्यवस्था हेतु अनुकरणीय है। किसी भी राष्ट्र की आर्थिक दशा को संतुलित बनाए रखने के लिए कराधान विभाग अत्यावश्यक है। ऋषि दयानन्द द्वारा उदयपुराधीश को पत्र में लिखा गया है कि कृषि राज्य की आय का मुख्य स्रोत है अतः कृषि पर ऐसा कर निर्धारित किया जाए कि एक कृषक को उसे देने में कोई समस्या न हो अन्यथा प्रजा में असन्तोष का वातावरण निर्मित होगा। युद्ध में विजित शत्रु राष्ट्र की सम्पत्ति का 16वाँ भाग सेना को अवश्य दिया जाए ऐसा ऋषिवर द्वारा निर्देश दिया गया है।[12] महर्षि द्वारा राष्ट्र आय के सदुपयोग का वर्णन करते हुए निर्दिष्ट किया गया है कि राज्य की आय का दशांश धर्मकार्य के लिए नियम होना चाहिए जिससे कि सुशिक्षा, वेदविद्या आदि को बढ़ाया जा सके एवं आपात काल में यही धन राज्य एवं अनाथों की रक्षा में प्रयोग किया जा सके।[13] किसी भी राष्ट्र में शांति व्यवस्था को बनाए रखने के लिए पड़ोसी देशों व राज्य से मित्रतावत सम्बन्ध होना आवश्यक है। महर्षि दयानन्द के विचारों से भी यही ज्ञात होता है कि वे भी अन्तर्राष्ट्रिय सम्बन्धों के प्रति सजग थे और पड़ोसी देशों से व्यापारिक तथा मित्रवत् सम्बन्धों के पक्षधर थे।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्वामी दयानन्द ने राजनीति के प्रत्येक पक्ष पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। उन्होनें आर्यसमाज की स्थापना ऐसे समय में की थी, जब भारत तथा अन्य देशों में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्तर पर अनेक अन्धविश्वास बाह्याडम्बर ऊँच–नीच तथा भेदभाव आदि प्रचलित थे। ऐसे समय में स्वामी दयानन्द रचित ग्रन्थों तथा उनके पत्रों में लिखित विचारों ने वैश्विक राजनीति के पटल पर राजनैतिक सिद्धान्तों को एक नया रूप प्रदान किया। आधुनिक काल में भी प्रायः सभी देशों में आर्यसमाज की संस्थाएं स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार–प्रसार कर रही है। आर्यसमाज के इन राजनीति सिद्धान्तों को अपनाकर कोई भी देश राजनीति के क्षेत्र में अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है।

संदर्भ

1. यस्य क्रतुर्विदश्योनसम्राट्...। ऋग्वेद 4/21/2
2. एकराडस्य भुवनस्य राजसि...। ऋग्वेद 6/37/8
3. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन पृ. 374 से उद्धृत।
4. उदयपुराधीश की दिनचर्या पृ. 46–48 से उद्धृत।
5. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन पृ. 423 पर द्रष्टव्य।
6. वही पृष्ठ 550

7. वही पृष्ठ 378
8. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, पृ. 374 पर द्रष्टव्य
9. वही
10. वही पृष्ठ 447
11. द्रष्टव्यः स्वमन्तव्य प्रकाश–अर्थ की परिभाषा
12. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन के पृष्ठ 372 पर द्रष्टव्य।
13. वही, पृष्ठ 374